



**Bhram Rishi KrishanDutt Ji
Maharaj Patrika April 2013**

॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हे मेरे प्रभो, हे देव ! आपको वेद ने माता कहा है, कैसी माता है? वसुन्धरा है क्योंकि जब आपका यह जगत् रचा था तो प्रभु आपने जगत् को रचते हुए उस समय मानव जीवन के लिए सन्ध्या को उत्पन्न किया, जो सन्ध्या पुरातन काल में द्युलोक में रमण करती थी अथवा वह देवताओं के लोक में रमण करती थी। देवता इसके आनन्द से आनन्दमय होते थे, आनन्द को पान करते रहते थे। उसी प्रकार भगवन् ! आज हम आपकी अपनी सन्धि करते हुए उस सन्ध्या को अपनाना चाहते हैं जिस सन्ध्या का देवतागण पान करते थे। देवतागण भी इस सन्धि से देववत् को प्रायः प्राप्त होते रहते थे। प्रभो ! तो इसलिए आपके हम द्वार पर जाना चाहते हैं।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव 1
2.	अनुक्रम	2
3.	मन का स्वरूप	पूज्यपाद-गुरुदेव 3-20
4.	गृह-प्रवेश	पूज्यपाद-गुरुदेव 21-26
5.	महर्षि याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ	पूज्यपाद-गुरुदेव 27-31
6.	Souls After Death.	पूज्यपाद-गुरुदेव 32-35
7.	जन्मदिन की शुभकामनाएं	पूज्यपाद-गुरुदेव 36-37
8.	स्मृति	पूज्यपाद-गुरुदेव 38
9.	चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग	पूज्यपाद-गुरुदेव 39
10.	आवश्यक सूचना व मासिक सहयोग	पूज्यपाद-गुरुदेव 40

आवश्यक सूचना

सभी वार्षिक सदस्यों को सूचित किया जाता है कि जिन सदस्यों ने अभी तक वार्षिक सदस्यता की राशि जमा नहीं की है वह कृपया करके मनीआर्डर द्वारा समिति के कार्यालय में या प्रकाशन मंत्री को वार्षिक सदस्यता की राशि भेज दें जिससे कि पत्रिका निरंतर प्रेषित होती रहे।

॥ ओ३म् ॥

मन का स्वरूप

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है। इस प्रकृति के कण-कण में उस महान् देव की आभा ही प्रतिभासित हो रही है। उसी के चेतना का भान हमारे मनस्तत्व में दृष्टिपात आता है और वह हमें नाना रूपों में दृष्टिपात होता है। उसी को आभा में हम अपने आप को स्वीकार करने लगते हैं। आज हम ऊँची से ऊँची उड़ान में उस गति में जाना चाहते हैं, जहाँ मानव के जीवन की प्रतिभा और मानव के मनस्तत्व की विवेचना आती रहती हैं। जब हम यह विचार करना प्रारम्भ करते हैं कि प्रायः हम कौन सी आभा के ऊपर विचार विनिमय करें? तो सबसे प्रथम हमारे समीप ब्रह्मवेत्ताओं की वार्ता आती है। उन ब्रह्मवेत्ताओं ने इस सँसार की जानकारी करने के लिये अपने मनस्तत्व को जानने का प्रयास किया और उनका यह शीर्षक रहा है कि हम इस मनस्तत्व को जान जाएँ जो यह प्रकृति का जितना मण्डल है इसके ऊपर हमारा आधिपत्य हो सकता है। इसके पश्चात् विज्ञानवेत्ताओं ने यह कहा है कि सँसार में हम उस वस्तु को जानना चाहते हैं जिससे इस परमाणुवाद का विभाजन हो रहा है। क्योंकि प्रत्येक परमाणु का विभाजन होता हुआ वैज्ञानिक को दृष्टिपात आता है। क्योंकि

वह नाना रूपों में तरंगित होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। विज्ञानवेत्ता ने यह जाना कि सँसार कैसे विभक्त हो रहा है? जिसके कारण यह परमाणु तरंगों में तरंगित हो रहा है। एक-एक तरंग में दूसरी तरंगें ओत-प्रोत हो रही हैं। उस वैज्ञानिकवेत्ता ने जब यह विचारा कि प्रायः हम इसको जानना चाहते हैं तो उन्होंने विज्ञान की उस आभा को जानने की उत्कृष्ट इच्छा प्रकट की जिससे यह सँसार नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है। उस आभा को जानने के लिये वैज्ञानिक नाना प्रकार से प्रयत्नशील रहा और नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण भी किया। ऐसी-ऐसी धातुओं को जाना जिससे हम उस विभक्त होने वाली वस्तु को दृष्टिपात कर सकें। आज तक नाना वैज्ञानिक हुए। उन विज्ञानवेत्ताओं में कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो विभाजन करने वाली वस्तु को वह किसी यन्त्र से दृष्टिपात कर सके।

मानव की आयु का निर्माण

अब आयुर्वेत्ता ने कहा कि मानव की आयु का निर्माण कैसे होता है। किन्हीं आचार्यों का तो यह सिद्धान्त है कि हम प्राणों के ऊपर आयु को स्वीकार करते हैं। किन्हीं आचार्यों का यह विचार रहा है कि हमारा जो आयु है वह योगों के ऊपर निर्भर रहता है। तो देखो यहाँ योग और प्राण के ऊपर दोनों ने अपना-अपना बल प्रकट किया। परन्तु **आदि ऋषियों का यहाँ कुछ ऐसा मत माना गया है कि मानव का जो जन्म होता है, वह भोग भोगने के लिए होता है** वह योग भोग कर यहाँ से चला जाता है। किन्हीं आचार्यों का यह सिद्धान्त रहा है कि मानव के श्वांसों की गणना है। जितनी जिसकी आयु होनी होती है उतनी उसकी श्वांसों की गति के ऊपर मानव का चक्र चलता रहता है। कोई भी यह निबटारा नहीं कर सका कि कौन से चक्र को हम स्वीकार करें।

आयुर्वेदाचार्य, मुनिवरो ! महात्मा भुञ्जु के दोनों पुत्र थे। महात्मा अश्विनी कुमार भयँकर वनों में विराजमान हैं। नाना प्रकार की औषधियों पर अनुसन्धान हो रहा है। वेद की पोथी उनके समीप है। उसमें से वह उस विषय को एकत्रित कर रहे हैं जिसमें आयु का वायु के ऊपर कुछ अवशेष अँकुर उन्हें प्राप्त हो रहे हैं जिससे मानव की आयु का निर्माण पर इस मन के ऊपर लेखनी की लेखनी बद्ध करने वाले ऋषि मुनियों के विचार, दार्शनिक विचार, यौगिक विचार उसमें वैज्ञानिक विचार, सर्व विचार उनके समीप हैं। समीप होते हुए हिमालय की कन्दराओं में विराजमान हो करके वह अनुसन्धान करते रहे। नाना प्रकार की औषधियाँ उनके समीप हैं। उन्होंने यह निर्णय दिया है कि **सँसार में 172 प्रकार के उन्माद माने जाते हैं**। उन उन्मादों में लगभग 36 प्रकार के उन्माद तो सतोगुणी कहलाते हैं और लगभग 50 प्रकार के तमोगुण में माने जाते हैं और जितने और उन्माद हैं 26 प्रकार के रजोगुणी माने जाते हैं। इन्हीं तीनों गुणों में यह सँसार ओत-प्रोत हो रहा है रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण इन तीनों गुणों में यह सँसार विभक्त हो रहा है। सँसार का जो चक्र है वह तीनों प्रकार के गुणों पर चक्रित हो रहा है।

सतोगुणी उन्माद

आज हमें विचार विनिमय करना है कि हम आज उन कौन से गुणों को अपनाना चाहते हैं। सतोगुणी जो उन्माद हैं उनमें कुछ उन्माद इस प्रकार के हैं जिन्हें हम देव-उन्माद कहते हैं, कुछ उन्माद इस प्रकार के हैं, जो चैतन्य उन्माद हैं, कुछ जड़ उन्माद हैं। जड़ उन्माद उन्हें कहते हैं जैसे सूर्य पर एक मानव विचार रहा है; मन की उड़ान उड़ता हुआ वह सूर्य को यह स्वीकार कर लेता है कि यह जो सूर्य है यह मानव के समीप आता है और प्रकाशक बन करके आता है, उसका अच्छी प्रकार मन्थन न करता हुआ उसके

मस्तिष्क में कहीं ऐसे वाक्य ओत-प्रोत हो जाते हैं और वह यही स्वीकार करता है कि सूर्य तेरे समीप आएगा, प्रकाश लेकर के आएगा, उस प्रकाश को तू पान करेगा। इसी में वह लगा रहता है। मन के ऊपर शब्द के अँकुर अँकित हो जाते हैं और अँकित होते हुए वह जो उन्माद बन जाता है वह जड़ उन्माद कहलाता है। वह अग्नि के ऊपर अपना मन्थन करने लगता है, मन्थन क्या करता है मानो उसके मस्तिष्क में वह समाहित हो जाती है। बुद्धि के क्षेत्र में उन वस्तुओं को लाया गया है तो यह मन की ही प्रतिक्रिया है, मन का ही एक आभूषण माना गया है जिसको हम देव-उन्माद कहते हैं।

इसके पश्चात् अश्विनी कुमारों ने यह विचारा है कि इसी प्रकार इसमें देव-उन्माद कुछ देवी के होते हैं कि देवी मेरे समीप आ गई है। जहाँ मन और प्राण एक सूत्र में आने के लिये तत्पर होते हैं तो वहाँ देवी का प्रकोप हो जाता है, मन और प्राण दोनों के मध्य में जब देवी की प्रतिभा मन में समाहित हो जाती है तो वह ऐसी वार्ता प्रकट करने लगता है जो वार्ता उसके मस्तिष्क में भी स्थापित नहीं होती। परन्तु ऐसी-ऐसी वार्ता प्रकट करने लगता है जिससे मानो उसके हृदय में वह अँकुर रूपों से तो किसी समय थी। परन्तु अब भी हमने जागरूकता से श्रवण कर रही है, मन में उनके विराजमान हो गई हैं। तो मानो देखो देवी हमारे समीप क्या आ जाती है परन्तु उसके सम्बन्ध में हम नाना चर्चाएँ प्रारम्भ करने लगते हैं। यह मन का आभूषण है। वह देवी प्रायः कहीं से आती नहीं है। परन्तु वह जो श्रद्धामयी देवी है वह जागरूक हो जाती है और वह मन उनको जागरूक करता है श्रद्धामयी देवी को। श्रद्धामयी देवी बन करके वह देवी के ऊपर नाना प्रकार की कल्पना प्रारम्भ कर देता है। उसका पूजन भी प्रारम्भ हो जाता है। पूजन का रूप रंग भी भिन्न हो जाता है। वह रूपरेखा नहीं रह पाती जो वास्तव में होनी चाहिये। जो वास्तविक रूप उसका था वह न रहा। न

रहने से देवी के ऊपर आवरण या आडम्बर हो जाता है। उस मानव की प्रतिभा उस देवी की ही प्रतिभा स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु प्रायः वह मन की ही आभा है, मन की श्रद्धामयी देवी है। जब मन की सहकारिता से, मन के श्रवण करने से वह देवी का एक विराट स्वरूप बन जाता है। वह प्रायः देवी नहीं होती है, वह मनों की ही आभा होती है। मन में उस समय नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं तो यह देवोन्माद कहा जाता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के ऋषित्व उन्माद माने जाते हैं वे भी सतोगुणी उन्माद हैं। **यह सब मानसिक विकार माने जाते हैं।**

तो मुनिवरो देखो ! इसमें से एक शाखा द्वितीय शाखा का जन्म होता रहता है और जन्म होता हुआ उन पर नाना प्रकार के अवशेष (सँस्कार) उत्पन्न हो जाते हैं। मानव के मन में एक आभा जागरूक हो जाती है कि इस मानव को यदि देवी के स्थान पर ले जाएँ तो मानो देखो वह उज्ज्वल विचार बन जाता है उसको वह वहाँ ले जाते हैं परन्तु मन की आभा का परिवर्तन होता है। मन का चित्रण रूप रेखा में अविरत (लगातार) होने लगता है तो मन की आभा वह श्रद्धामयी देवी दूसरे रूपों में परिणत हो कर के उसका सुन्दर रूप बन जाता है। वह जिस रूप से देवी के सम्पर्क में चला गया था उसी के द्वार पर चला जाता है। विचार विनिमय क्या कि आचार्यों ने कहा है, वेद की पोथी उनके समीप है, नाना प्रकार के उन्मादों की चर्चा कर रहे हैं।

रजोगुणी उन्माद

रजोगुणी उन्माद कैसे होते हैं? एक संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ। रजोगुणी उन्माद वे होते हैं जो राजा के राष्ट्रीय विचारों में—आज मैं राजा के राष्ट्र को मानो अपनी आभा से, अपने भुज बलों के बल से इसका परिवर्तन करूँगा। कुछ इस प्रकार

की धारा के आश्रय हो जाते हैं जो राष्ट्रीय कुछ भय होते हैं, भय के कारण उनमें नाना प्रकार के भय के अँकुर उत्पन्न हो जाते हैं। उनसे भयभीत होता हुआ मन एक वाक्य को रटने लगता है। जब अतिभय हो जाता है मानो घृणा हो जाती है। घृणा के साथ में क्रोध होता है तो उस समय मन और कोई कार्य नहीं करेगा जिसके कारण वह भय और वह क्रोध की मात्रा, जिसके कारण ममता की मात्रा आई है, वह उसी एक रटन्त को रटने लगता है। उसी में उसका मस्तिष्क प्रभावित होने लगता है। वह उसी में रमण करता है तो उसको राष्ट्रीय उन्माद कहा जाता है। कोई तो यह कह देता है कि यह राजा रहा होगा परन्तु प्रायः ऐसा नहीं है। क्योंकि देखो उसे भय है।

मैं तुम्हें एक वाक्य और कहे देता हूँ। जो अश्विनी कुमारों ने कहा है कि 'अवृह' जिस स्थान में घृणा और मोह और क्रोध की मात्रा तीनों जब एक गृह में प्रविष्ट कर जाते हैं, एक ही धारा में रमण कर जाते हैं, मन के ऊपर जाकर के तीनों का आक्रमण होता है, यदि मन बलिष्ठ होता है तप के कारण, तो उनका आक्रमण वह सहन कर जाता है। यदि वह मन प्रकृति के आवेशों में विशेषकर है, तमोगुण में है, उस समय जब तीनों की छाया का प्रहार होता है उस मन के ऊपर, तो मन इतना नीचे दब जाता है कि उनके आगे कोई वाक्य प्रकट नहीं करता। वह उसी को रटने लगता है। इसके कारण उसे मोह, क्रोध और घृणा एक स्थली में आ गई है। जिसके कारण वह तीनों की एक ध्वनि होने लगती है। उसी को वह श्रवण करने लगता है। इसको हम राष्ट्रीय उन्माद कहा करते हैं।

तमोगुणी उन्माद

तमोगुणी उन्माद कैसे होते हैं? जैसे एक मानव किसी वस्तु पर मोहित हो गया और मोहित होने के पश्चात् यदि

उसे वह वस्तु प्राप्त नहीं हुई और शरीर में मोह के कारण, क्रोध के कारण अस्वस्थ विचार बन गये हैं, अपनापने की प्रवृत्ति बन गई है, इसके अवशेष कुछ परमाणु मस्तिष्क में जा करके मन के क्षेत्र में अँकुरित हो जाते हैं। वह मन मानव के मस्तिष्क को उस अग्नि की आभा में रमण करने लगता है। वही ध्वनि आने लगती है, उसको कामोन्माद कहा जाता है। उसको तमोगुण-उन्माद माना गया है। क्योंकि उस उन्माद में कोई वास्तविकता नहीं होती। केवल वह अपनापने की प्रवृत्ति में और परमाणुओं की ऊर्ध्व गति मन के क्षेत्र में रमण करने लगती है। मन की अति तृष्णा बलवती हो जाती है, उस तृष्णा की अति हो जाती है सीमा से। उस काल में इस मानव को नाना प्रकार के तमोगुणी उन्माद प्रारम्भ हो जाते हैं। इसी प्रकार जिस भी क्षेत्र में जाओगे उसी क्षेत्र में तुम्हें उन्माद ही उन्माद दृष्टिपात आएंगे। परन्तु उस समय प्रायः मानव यह कहता है कि यदि वस्तु प्राप्त न होगी तो मानो मेरा शरीर अग्नि में भस्म हो गया है। क्योंकि जिसके कारण जो अग्नि उत्पन्न हुई है यदि वह वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है तो वह अग्नि शान्त हो जाती है और शान्त हो करके उसका तमोगुणी उन्माद समाप्त हो जाता है। अभिप्रायः यह है कि उन्माद रजोगुण, तमोगुण-सतोगुणों से भी युक्त होते हैं।

मन का आवेश

मेरे प्यारे ! यहाँ नाना प्रकार की विचारधारा इसी प्रकार की मानी जाती हैं। महात्मा अश्विनी कुमारों ने मन्थन करते हुए यह कहा है कि हम विचार-विनिमय करते रहें। वेद की पोथी उनके समीप है, विचार कर रहे हैं। विचार-विनिमय करते हुए उन्होंने एक वाक्य अपने अनुभव का कहा है। हमारा यह मन्तव्य है, हमारी यह धारणा बनी हुई है कि यदि मानव इस

मन की कल्पना को त्याग देता है और यदि यह मन नहीं होता तो शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं होता। यह रोग किस कारण से होता है? यह मैंने कई काल में प्रकट कराया है। अश्विनी कुमारों ने यह कहा है कि संसार में मानव को जितने भी रोग होते हैं उनमें कुछ रोग ऐसे हैं जो शारीरिक रोग हैं। विशेषकर जो रोग इस प्रकार के हैं जो मानसिक तत्वों से संबन्धित हैं, मानसिक विचारधाराओं से उनकी विचारधारा सम्बन्धित रहती हैं उसी में मानो वह परणित रहता है। उन्होंने निर्णय करते हुए कहा है कि यह जो मन है इसके द्वारा धारणा बनी कि अमुक स्थान पर एक ऐसा देव रहता है जो देव मानव का भक्षण कर जाता है तो उसी का भय उस मानव के मन में विराजमान हो जाता है और उसी का भय बन जाता है। भय बनने के कारण उससे मोह भी आता है कि उस स्थान में जाना था, जिस स्थली से उसे मोह भी बना हुआ है। परन्तु जब मोह के स्थान में भय आ जाता है तो यह जो प्राण है यह सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाता। जब सुचारू रूप से कार्य नहीं बन पाता तो जो आहार करता है वह शरीर में रस नहीं बनाता। वह जो भी जल इत्यादि पान करता है वह सोम बन करके नहीं जाता। क्यों ऐसी अग्नि उत्पन्न हो जाती है भय के कारण, मोह के कारण वह उसे अमृत बनने नहीं देती। अमृत उस काल में बनता है जब मानव के शरीर के यह मन और प्राण दो ही वस्तु हैं। एक विभक्त होने वाला एक विभाजन करने वाला। वह जो विभाजन करने वाला है वह विभाजन कर रहा है, विभक्त होने वाला विभक्त हो रहा है। दोनों में 'गृह क्रतान' हो रहा है, इसमें आभा से आभायित होता हुआ जीवन की धाराओं में रमण करता हुआ वे नाना प्रकार के रोग बन करके रहते हैं। जब (प्राण) ऊँचा कार्य नहीं कर पाते तो वह मानसिक क्या परन्तु

शारीरिक रोग बन गया। इसी प्रकार मेरे प्यारे ! बहुत से रोग इस प्रकार के हैं जो मानव अपने मन के कारण उत्पन्न कर लेता है इस मन की इच्छा पूरी करने के लिये। मन की इच्छा पूर्ण नहीं होती। परन्तु इसकी इच्छा पूर्ण करता रहता है। यह तमोगुणी अवशेषों को उत्पन्न कराता है। ऐसे पदार्थों का पान करता है, ऐसे आवेशों से उसे यह प्रतीत होता नहीं कि यह क्या है? परन्तु जब आवेश समाप्त हो जाता है उस समय उसे ज्ञान होता है, विवेक होता है कि मैं इस कार्य को नहीं करता तो मेरे हृदय में इतनी निराशा के अँकुर उत्पन्न नहीं हो सकते थे, इतने घृणा के अवशेष उत्पन्न नहीं हो सकते थे। मैंने यह उस काल में नहीं विचारा। तो वह प्रकृति का आवेश, मन का आवेश आता रहता है।

हमारे आचार्यजनों ने ऐसा कहा है कि जब मन और प्राण को एक सूत्र में लाने का योगी प्रयास करता है तो उस समय इस मन को नियंत्रण में लाया जाता है। यदि यह मन नियंत्रण में नहीं आता तो योगी बारम्बार प्रयत्नशील रहता है। वह प्रयत्न करता है। क्योंकि **मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम योग है।** (इन उन्मादों को किसी मानव ने समाप्त करना है तो मन और प्राण दोनों को एक क्रिया में लाने का प्रयास करें) **अपने मन को ज्ञान के द्वारा इतना शक्तिशाली बनाना चाहिये परमात्मा के सूत्र में पिरोते हुए गायत्री छन्दों में पिरोते हुए, जब मन में ऐसे अवशेष उत्पन्न कर लेता है कि मैंने लाखों गायत्रियों का जपन किया है,** मेरे मन में कुछ ऐसे चित्रण आ रहे हैं, वही शब्द उसमें रमण कर रहे हैं, मन उनको अपने मस्तिष्क में अंकित कर लेता है। क्योंकि गायत्री में 24 अक्षर होते हैं और 24 तत्वों से हमारे इस मानव शरीर का निर्माण होता है। एक तत्व के आधार पर

एक-एक आभा में प्रत्येक शब्द रमण कर रहा है। उस शब्द को जब मुनिवरो ! देखो, प्रत्येक तत्व अंकित कर देता है, तो जहाँ से भी उसे सुगन्ध आती है वहीं गायत्री की आती है, गायन की आती है, प्रभु के चिन्तन की आती है। तो मेरे प्यारे ! वह महापुरुष गायत्री सिद्ध कर लेते हैं। **गायत्री सिद्ध का अभिप्राय: यह है कि मन के द्वारा इसकी रटना होने लगती है।** जैसे हमारे यहाँ पुरातन काल में बाल्य स्थिति में ही उन्हें श्रुति का रमण कराया जाता था। उसको रटन्त विद्या कहा जाता है। उसको श्रुति कहा जाता। क्योंकि हमारे यहाँ बहुत परम्परा से आचार्यजन, गुरुजन वेद की पोथी उन्हें कंठ कराते और कैसे? जब मन गुरु के चरणों में रहता, शब्द में रहता और कंठ हो जाता उसको श्रुति ज्ञान कहा जाता। वह जो श्रुति ज्ञान है, वह जो केवल श्रवण मात्र से उसका ज्ञान हो जाता। **जैसे हमारे यहाँ पुरातन काल में वेदों को श्रुति कहा जाता है। श्रुति का अभिप्राय यह है कि जो श्रवण करने से ही कंठ होती है।** अक्षरों का ज्ञान नहीं होता परन्तु वेदों के मन्त्र उनके समीप रहते हैं। जैसे बाल्यकाल में माता पिता अपने प्यारे पुत्र को लोरियाँ देती रहती है। माता उसे ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश देती रहती है। आचार्य के कुल में जाता है तो आचार्य उसे श्रवण करा रहा है। आओ बालक विराजो ! पाठ उसे कंठ करा दिया। वह कंठ में उसे रमण कर रहा है। रटन्त कर रहा है। मन उसके समीप है, बुद्धि उसके समीप है, वेद का वेद उसके कंठ हो जाता है।

वेद जिसके कंठ हो जाते हैं, श्रुति कंठ हो जाती हैं, उन्हीं की आभा को लेकर के व्याख्या करता है, अपने मन को उस व्याख्या में परणित कर देता है। तो मेरे प्यारे ! उस मानव को हम क्या कह सकते हैं? मानो वह मन की ही एक आभा

है और उसे वेदों का ज्ञान हो जाता है जिसको हम गायत्री से शुद्ध करते हैं। शुद्ध करने का अभिप्राय यह कि वह एक अक्षरों में, अपने एक-एक तत्व में, अपने मस्तिष्क में उसको जब मानव लेखनी बद्ध करता है इसी प्रकार मस्तिष्क में उसकी लेखनी बद्ध हो जाती है। लेखनी बद्ध होते ही उसे श्रुति कहते हैं। उसी गायत्री मन्त्र के जाप द्वारा मन का इतना आवेश होता है कि मन उस उन्माद के द्वारा गायत्री का जपन करता है। वहाँ से उसका उन्माद समाप्त होने लगता है। क्योंकि वह जो उन्माद है जो उस गायत्री मन्त्र वाले उन्माद से निम्न श्रेणी वाला है। जहाँ उससे ऊँची वार्ता मन की प्रारम्भ हो जाती है वहाँ से उन्माद समाप्त होने लगता है। मेरे प्यारे ! राष्ट्रीय जो उन्माद है वह समाप्त हो जाता है। तमोगुणी जो उन्माद है वह समाप्त होने लगता है।

महात्मा अश्विनी कुमारों का आयुर्वेद का गहन अध्ययन

विचार विनिमय क्या? महात्मा अश्विनी कुमारों ने यह कहा है कि इस नाना प्रकार के उन्मादों को अनुसन्धान करने वाले बनें। उन्होंने बेटा ! अनुसन्धान किया और नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करने का प्रयास किया। उनका आयुर्वेद में इतना गहन अध्ययन था कि जब वह रात्रि काल में विराजमान होते वह नाना प्रकार की औषधियों को पान करते। मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय महात्मा अश्विनी कुमार ने अश्व के शरीर को धारण किया और अश्व भी नाना प्रकार की औषधियों को चरता है। नाना प्रकार की वनस्पतियों को उसने चरा और चरने के पश्चात् अपने आत्मत्व के प्रकाश में इस मन से प्रत्येक औषधि पर उन्होंने अनुसन्धान किया। मेरे प्यारे एक 'गुडापेष' औषधि होती है मानो एक 'अश्वकेतुक' नाम की औषधि होती है उन दोनों औषधियों को जब मिश्रण करके, जब अश्विनी कुमार पान करते थे तो ब्रह्म आभा

में उन औषधियों को पान करने से अश्व की योनि में ही ब्रह्म-ज्ञान उनके स्मरण होता चला जाता था। उनका अध्ययन कितना विशाल रहा है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब अश्विनी कुमारों ने अश्व की योनि को स्वीकार करके ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश पान कराया था महात्मा दधीचि के कंठ के ऊपरले भाग अश्व के मस्तिष्क को स्थिर करके, औषधियों से ज्यों का त्यों बना करके ब्रह्म की आभा चल रही है और उसको अश्विनी कुमार औषधियों के द्वारा उसे मुखारबिन्द से उसको पान कर रहे हैं। आज मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। अश्विनी कुमार प्रातः काल जाते थे और वह नाना प्रकार की औषधियों को लाते 'गड़ापेश', 'अश्वेताम' नाम की दोनों औषधियों को ला करके, उनका अमृतपाक बना करके प्रातःकाल में महात्मा दधीचि को पान कराते थे और उसी के द्वारा उनसे ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश पान करते थे। अश्व का मस्तिष्क लगा हुआ था। तो मुनिवरो ! यह क्या है? उनका इतना ऊँचा अध्ययन इस आयुर्वेद में रहा है। आज हमें आयुर्वेद को वैसे ही स्वीकार नहीं करना चाहिये। यह तो आयु का वेद है। इससे आयु की प्राप्ति होती है जो आयुर्वेद का अध्ययन कर लेता, अँग और उपँगों के सहित वह जानता है कि मेरी आयु का जो उद्देश्य है वह क्या है।

मेरे प्यारे ! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महात्मा अश्विनी कुमारों ने अश्व के मस्तिष्क के द्वारा अपने उद्देश्य का पान कर रहे हैं। महाराजा इन्द्र को जब यह प्रतीत हुआ था कि अश्विनी कुमारों को ब्रह्म का उपदेश दिया जा रहा है तो उस समय महाराजा इन्द्र ने अपने अस्त्रों शस्त्रों से महात्मा दधीचि के कंठ के ऊपरले भाग को दूर कर (काट) दिया था। तो अश्विनी कुमारों ने महात्मा दधीचि के कंठ से ऊपर का भाग था वह औषधियों में स्थिर था। उस कंठ से

ऊपरले भाग को ला करके उनके कंठ के ऊपरले भाग में स्थिर करके 'गुड़ापेश', 'चेताम्बरी', 'मनुकेता', 'कुरिचनी', 'अनुवासन' नाना प्रकार की औषधियों को लाकर के अग्नि में तपाया और पात बना करके तीन समय लेपन करने से वह कठ ज्यों का त्यों बन गया। हमारे यहाँ जो आयुर्वेद की औषध हैं, आयुर्वेद का जो ज्ञान है वह अश्विनी कुमारों को बहुत ही ऊर्ध्व गति में था। उसके पश्चात् महात्मा दधीचि से ब्रह्म ज्ञान पान किया।

उन्माद का उपचार

तो मेरे प्यारे ! आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय आज हमारा यह है कि हमें विचारना चाहिए। हमें नाना उन्मादों को त्याग देना चाहिए। नाना प्रकार के उन्माद गायत्री छन्दों के रटन्त करने से, परमात्मा का चिन्तन करने से, वेदों की ध्वनि करने से, मन को तपाने से, मन और प्राण को एक तारम्य में लगाने से हमारे उन्माद समाप्त हो जाते हैं। यह उन्माद, यह रोग उस शरीर में हुआ करते हैं जहाँ मन और प्राण सुचारु रूप से कार्य नहीं करते और जहाँ प्राण और मन दोनों जिस मानव के शरीर के विभाग में सुचारु रूप से सर्वत्र में कार्य करते हैं उस समय तक कोई रोग नहीं होता। परन्तु जब यह मन और प्राण दोनों का विभाजन होकर इतना दूर चला जाता है कि मन तो उन्माद में चला गया है और प्राण श्वांसों की गति में चला गया, वह अशुद्ध परमाणु ला रहा है तो उस समय मानव का शरीर रोगी हो जाता है और मन इतना निम्न श्रेणी को चला जाता है जिसे भावावेश कहते हैं, मानो जिसको घृणा कहते हैं, मानव में स्वयँ अपने जीवन से, उसके कार्यक्रम से घृणा प्रारम्भ हो जाती है और वह जो घृणा है वह मानव का मृत्यु का मूल कारण बना करता है।

नास्तिक की विवेचना

आओ ! आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। अश्विनी कुमारों ने नाना प्रकार के वाक्य प्रकट करते हुए कहा है कि इस मन को विचारा जाये, यह मन क्या वस्तु है? मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्व है। जब इस मन की उड़ान को लेकर के परमाणुवाद में जाते हैं तो लोक-लोकान्तरों में चले जाते हैं। यह मन ऐसा विचित्र है, ऐसा गतिवान है, यह मन और प्राण दोनों को लेकर के जब ऊर्ध्व गति में रमण करने लगता है तो योगीजन लोक-लोकान्तरों पर अपना आधिपत्य कर लेते हैं जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता नाना तरंगों को जानता हुआ और मन से उड़ान उड़ता रहता है, एक मन वह है जो परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। जब उसे (मन को) इस सँसार से निराशा आती है, नाना सम्बन्धों से घृणा होती है, हर्ष और धर्म दोनों से घृणा आ जाती है और उस समय वह परमात्मा को अपने से दूर कर देता है। मानो वह अपनी आभा में इतना आभायित हो जाता है कि वह सँसार को न होने के तुल्य स्वीकार करता है और सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह केवल सँसार को इतना मिथ्या ज्ञान में ले जाता है, इतना मिथ्यावाद में चला जाता है कि उस मानव को नास्तिक कहते हैं। नास्तिक क्यों कहते हैं क्योंकि उस मन की जितनी क्रिया थी सर्वत्र का विनाश करता हुआ वह नास्तिक कहलाता है। नास्तिक कौन होता है? नास्तिक वह कहलाता है जो ज्ञान में इतना प्रबल बन जाता है। दो प्रकार के नास्तिक होते हैं—एक नास्तिक वह होता है जिसको सँसार का कुछ ज्ञान ही नहीं है, वह भी नास्तिक है। दूसरा वह नास्तिक है जो सँसार को जानता रहता है परन्तु उसमें विश्वास नहीं हो पाता, अन्तिम परिणाम यह होता है कि वह इस सँसार को यह विभक्त होने वाला, विभाजन करने वाला अपने आपको स्वीकार करता हुआ और यह केवल अपने आपको स्वीकार करता

हुआ वह नास्तिक कहलाता है। उसे सँसार का ज्ञान है, प्रकृति का ज्ञान हो गया और चेतना का भी ज्ञान हो गया। अपने मन में चेतना को स्वीकार करता है परन्तु उसके द्वारा तप न रह करके नास्तिक कहलाता है। यदि उसके द्वारा तप होता तो वह नास्तिक न बन पाता।

महर्षि कपिल जी का नास्तिकवाद

हमारे यहाँ महर्षि कपिल जी को नास्तिकवाद आ गया था। जब कपिल मुनि महाराज प्रकृति के तत्वों को चिन्तन करने लगे और प्राण के ऊपर चिन्तन हो गया, मन के ऊपर चिन्तन होने लगा तो वह अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पहुँचे और गुरुदेव से यह कहा कि सँसार में मुझे दो ही वस्तु प्रतीत होती हैं—एक विभाजन होने वाली और एक विभाजन करने वाला मन है और विभक्त होने वाला सँसार में प्राण है और जिसे आप परमात्मा स्वीकार करते हो वह मुझे स्वीकार नहीं हो रहा है, उसको मैं जान नहीं पा रहा हूँ। परमात्मा की सँसार में क्या सत्ता है? क्योंकि एक विभाजन हो रही है और एक विभाजन कर रहा है यह दो ही वस्तु हैं मानव के शरीर में। प्राणों का विभाजन होता है और मन विभाजन करने वाला है। इसी प्रकार इस पृथ्वी के गर्भ-स्थल में रसों का आदान-प्रदान है वह मन के कारण हो रहा है और प्राण उसमें गति कर रहा है। क्योंकि **जल से प्राण है और अन्न से मन की उत्पत्ति है।** ऐसा ही भगवन् ! यह स्वीकार करने वाला जगत् मुझे दृष्टिपात आ रहा है। इसलिए परमात्मा कौन सी सत्ता है? यहीं इनको स्थिर किये हुए है। आज मन और प्राण दोनों अस्त व्यस्त हो जाएँ तो वह विभाजनवाद सर्वत्र समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार नाना प्रकार के जो लोक-लोकान्तर दृष्टिपात आ रहे हैं, नाना जो ब्रह्माण्ड हैं यह केवल मानो यह देखो

उसी की आभा में आभायित हो रहा है। वह जो प्राण मन के कारण विभक्त हो रहा है, विभक्त करने वाला मन है और इसके जो विभाग हो रहे हैं वह प्राण है। नाना लोक-लोकान्तरों में दृष्टिपात आ रहा है। लोकों में उसी की आभा है। उस समय उनके गुरु को कोई उत्तर नहीं बन पाया और उन्होंने कहा कि हे बाल्य ! अब तुम तपस्वी बनो। तुमने यह सर्वत्र जाना है अब तुम तप करो। उन्होंने कहा कि तप क्या है तो ऋषि ने कहा है कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करो। जब **इन्हें एक सूत्र में लाओगे तो उसी का नाम तप** है, तुम्हारी इन्द्रियाँ संयम में होंगी और संयम में होकर के मन और प्राणों के रहस्यों को जब तुम जानोगे उस समय तुम्हें जड़ और चेतन का ज्ञान होगा और 'तप से प्रभु का विश्वास होता है।'

ऋषि-मुनियों का अनुसन्धान

मेरे प्यारे ! आज मैं यहाँ कपिल जी की चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें यह निर्णय देने आया हूँ। आज महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर है, यह कहा करते हैं कि संसार में एक प्राणी दूसरे प्राणी से दुःखित हो रहा है, नाना प्रकार की योनियों से दुःखित हो रहा हूँ। मैंने यह कहा है पुत्रवत् ! यह संसार में केवल मन के आवेश हैं, मन के उन्माद हैं, नाना प्रकार के उन्मादों में यह जगत् ओत-प्रोत हो रहा है। मानो एक मानव पर्वत के ऊपर जाता है, जहाँ नाना प्रकार के ऐसे अवशेष उसके समीप आते हैं, उन्हीं में वह रटन्त होने लगता है, उसकी ध्वनि आने लगती है मानो देखो उसे क्या हुआ? उसे देव-उन्माद (देवोन्माद) कहा जाता है। आज मैं उन्मादों की गणना करने नहीं आया हूँ। पुत्रवत् ! आज मैं तुम्हें यह निर्णय देने आया हूँ कि संसार में उनका कितना

अनुसन्धान रहा है। उस अनुसन्धान के ऊपर हमें विचार विनिमय करना चाहिए और जो नास्तिक बना उसका उन्माद कहाँ चला गया। उन्माद उनको होता है जो प्रकृतिवाद में, जो भोग विलास में अति तल्लीन रहते हैं उनके द्वारा यह उन्माद विशेषकर होते हैं। जिसके मन को संसार का कार्य नहीं रहता। **यदि परमात्मा का चिन्तन उसके मुखारबिन्द पर है, रसना पर है तो उनको किसी प्रकार का उन्माद नहीं आता।** वह परमात्मा के उन्माद में रमण करते हैं। वह सत् के उन्माद में चले आते हैं। उन्हें विवेक उत्पन्न होता। जब मन ज्ञान में इतना रत हो जाता है कि यह प्रकृति क्या यह तो निर्लेय है, जब प्रत्येक वस्तु में रस को जानने लगता है, रहस्य की उत्पत्ति करने लगता है और रहस्य उसे कहीं प्राप्त नहीं होता, प्रत्येक वस्तु उसे निर्लेय प्रतीत होने लगती है तो उसके पश्चात् बुद्धि और मन दोनों चित्त में रमण कर जाते हैं। आत्मा के प्रकाश में जाकर के उसे विवेक की उत्पत्ति हो जाती है। उसे विवेकी पुरुष कहते हैं। ज्ञान उसके समीप है, परमात्मा के प्रकाश में वह रमण कर रहा है, उसे मेरे प्यारे ! ऋषित्व कहते हैं। क्योंकि वह संसार की प्रत्येक वस्तु को जान करके परमात्मा का ही ध्यान है। वह प्रकृति पर अपना आधिपत्य करता हुआ अपने विवेक में आत्मा के प्रकाश में यह मन चला जाता है। प्राण भी चला जाता है। मन और प्राण एक सूत्र में आकर के परमात्मा के समीप चले जाते हैं।

मेरे प्यारे ! गुण से गुणी कदापि पृथक नहीं होता। संसार में जो मानव यह जानता है कि मुझे मन और प्राण दोनों की प्रतिक्रिया को जानना है तो दोनों के कारण, दोनों के विशेष विभाजन होने से यह नाना प्रकार के अवशेष उत्पन्न होते हैं। अति तृष्णा के उत्पन्न होने पर मानव में **शान्ति वासना** की प्रवृत्ति हो जाती है। यह भी न हुआ आज्ञा देता है पिता, पुत्र

कार्य कर रहा है, वह काम की उत्पत्ति हो रही है। जैसे इस काम का उपराम होता है तो वह तमोगुणी कामना में अवशेषों में भोग-विलास के क्षेत्र में चला जाता है। यदि मानव को संसार का और कोई कार्य नहीं रहता केवल यही रहता है कि ऐसे-ऐसे प्राणियों को उन्माद विशेषकर आते रहते हैं। ऐसे-ऐसे प्राणी तमोगुण में रमण करते हैं। तमोगुणी उन्मादों में वह भूत पिशाच योनियों के अवशेष स्वप्न में भी उनको वही दृष्टिपात आने लगते हैं। क्योंकि ब्रह्मचर्य की गति ध्रुवा (नीचे) गई है। ऊर्ध्व नहीं रही है। श्रोत्रों में प्रसारण शक्ति न रही केवल वह ध्रुव गति होकर के ब्रह्मचर्य के परमाणुओं की आलस और प्रमाद में तरंगित होकर के और दम्भ जब तीनों एक स्थान में आ जाते हैं तो वह प्रेत बन करके, भूत बन करके उसके समीप आने लगता है।

आज मैं उन अश्विनी कुमारों की चर्चा प्रकट कर रहा था **आयुर्वेद यह कहता है कि जो मानव सत्य के ऊपर आरूढ़ रहने वाला है, सत्यता में रमण करने वाला है, उनको न तो प्रमाद छाता है न उन्हें उन्माद आता है। वह केवल अपनी सत्यता के आँगन में रहते हैं।** उनमें मनस्तत्व की भावना होती है और परमात्मा के द्वारा रमण करने वाले सदैव परमात्मा का चिन्तन करते रहते हैं। मेरे प्यारे ! जो समाप्त होने वाला काल है उसको देखो भूतकाल में परणित किया जाता है। हमारे यहाँ दर्शनों का एक सिद्धान्त यह कहता है कि मानव के शरीर को त्याग गया कर्म उसके द्वारा शेष हैं तो पुनः मानव की योनि प्राप्त हो गई जिस भी प्राणी की उसे योनि प्राप्त होती है....(बीच में टेप नहीं हो सका।)

उस क्षेत्र में जाते ही मुनिवरो ! वह जीवन मुक्त बन जाता है, उसमें यह विशेषता उत्पन्न हो जाती है कि वह आत्मा इस कर्तव्य पर इतना आधिपत्य कर लेता है कि जिन परमाणुओं से उसका शरीर बना था स्थूल, कारण और सूक्ष्म तीनों शरीरों को वह धारण कर सकता है। तीनों शरीरों में वह गमन कर सकता है। उनका निर्माण भी कर सकता है। उनको माता-पिता के गर्भ में

॥ ओ३म् ॥

गृह-प्रवेश

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे बारम्बार यह प्रेरणा देते रहते हैं उनकी प्रेरणा के साथ मैं अपने वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ। **आत्मा का प्रवेश उस काल में होता है।** संसार में होता है, आत्मा जब शरीरों को धारण करता है। जबकि परमात्मा इस भव्य भवन का निर्माण कर देते हैं। यह जो संसार है यह भव्य भवन है और यह कैसा भव्य भवन है। इसमें न तो किसी प्रकार का खम्भ है। इसमें केवल सूर्य का खम्भ बना हुआ है। तीनों गुणों से ही यह संसार स्थिर हो रहा है। रजोगुण, तमोगुण आदि से जैसे राष्ट्र का प्राण उनमें प्राण गति करता है। यह ब्रह्माण्ड एक मण्डल है। एक मण्डल निचले स्थल में आकर्षण शक्ति से एक दूसरा मण्डल स्थिर हो रहा है। एक दूसरा लोक स्थिर हो रहा है। इसी प्रकार परमात्मा ने इस भव्य भवन का निर्माण किया। इसके जो वास्तविक खम्भ हैं वे चन्द्र और सूर्य कहलाते हैं। इसी प्रकार जैसे मानव के शरीर में और भी मूल में जाओगे तो रुद्र और शब्द इस ब्रह्माण्ड को स्थिर किए रहते हैं। जैसे इस मानव शरीर को स्थिर करने वाला रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण कहलाता है। इसी प्रकार यह रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण भी ज्ञान और प्रयत्न इसको स्थिर किए रहते हैं। ज्ञान और प्रयत्न इस मानव के शरीर को मन और प्राण स्थिर किए रहते हैं। मन और प्राण जब एक सूत्र में आ जाते हैं तो गुण से गुणी पृथक नहीं होता। आत्मा इसको चेतनित कराए रहता है। मानो वह इसको स्थिर किए रहता है। इसी प्रकार हमारे यहाँ जब गृह का निर्माण होता है तो यजमान के जो विचार होते हैं, वह पति और पत्नी के जो विचार होते हैं उन्हीं विचारों पर वह गृह स्थिर रहता है। वह गृह स्थिर रह करके

वही मानव का विचार, यजमान का विचार व्यवसाय वही उसकी क्रिया में गमन करता हुआ गृह को स्थिर किए रहता है। वही विचार गृह का प्राण है। गृह, गृह कहलाता है जहाँ विचार विनिमय होता है, जहाँ अग्नि की पूजा होती है।

अग्नि का अभिप्राय कि जहाँ वाणी का सत्कार होता हो, यथार्थ वाणी में परणित होने वाला हो। वह मानो गृह का वास्तविक प्राण है और वह गृह कहलाता है। गृह का अभिप्राय कि जिसमें प्राणी वास कर सकता हो। जिस गृह में अपने को प्रवेश कर सकता हो। यह शरीर भी गृह है, गृह को गृह में प्रवेश करना चाहता है। जैसे यह आत्मा प्रकृति के तत्वों को प्रवेश करती हुई रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण इन तीनों तत्वों को अपने में प्रवेश करती हुई जब वह प्रवेश करती है तो अन्तरात्मा चाहता है, उसकी इच्छा होती है कि मैं अपने गृह में गृह को प्रवेश करूँ।

शरीर को त्याग करके यह आत्मा सबसे प्रथम यह विचार करता है कि परमात्मा है या नहीं। उसमें कहता है कि परमात्मा है। जब परमात्मा है तो उसमें वह अपने अन्तरात्मा में उसको प्रवेश करना चाहता है। प्रत्येक प्राणी की यह इच्छा है कि मैं सूक्ष्म वस्तु को स्थूल में प्रवेश करना चाहता हूँ। उस समय वह जो आत्मा है वह अपने सखा के ऊर्ध्व गति को जाने के लिए प्रकाशित रहता है। जैसे यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। अग्नि का प्रकाश ऊर्ध्व गति को जाता है। मानो सत् विद्या वाली अग्नि कहलाती है। सत् विद्या क्या है? जैसे एक ही सप्ताह में सात दिवस होते हैं, सात दिवसों की सात प्रकार की अग्नि यज्ञशाला में प्रवेश करती है। वह जो अग्नि है अग्नि का सम्बन्ध सूर्य लोकों से होता है, सूर्य लोकों का अभिप्राय यह नहीं कि यह जो लोक प्रकाश दे रहा है यही है, सूर्य लोक उसे कहते हैं जहाँ अग्नि का प्रकाश हो और जहाँ अन्धकार नहीं होता। सदैव वहाँ प्रकाश ही प्रकाश रहता है।

सूर्य लोकों की मीमांसा

अब सूर्य लोकों की मीमांसा करते हुए आदि ऋषियों ने ऐसा कहा है कि सूर्य लोकों की मीमांसा केवल इतनी ही नहीं है कि हम एक लोक की गणना करें, ऐसे-ऐसे सूर्य तो परमात्मा के राष्ट्र में अनन्त माने जाते हैं। यह तो एक लोक है। सूर्य का भी कोई सूर्य है। जो सूर्य मण्डल के प्राणियों को भी प्रकाश देता है। उस सूर्य का भी कोई प्रकाशक है। सूर्य का भी कोई सूर्य बना होता है। इसका केवल इतना अभिप्राय है कि जहाँ यह आत्मा इस शरीर को त्याग करके सूर्य लोकों में जाए वहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहे। अन्धकार न हो। प्रकाश में रमण करने वाला हो। इसी प्रकार आत्मा भी यही चाहता है कि जैसे इस शरीर को त्यागा या इस शरीर में प्रवेश कर रहा है तो वह यह चाहता है कि मैं अपने सखा के द्वार पर चलूँ। वह अपने सखा के लिए चलता है, निर्माण करता है, वह गति करता है और जब गति करता है तो वह सूक्ष्म शरीर बन करके (द्वारा) सूर्य लोकों में जाता है तो वह वहाँ से भी नाना जन्मों को प्राप्त होता हुआ, नाना आनेय शरीरों को धारण करता हुआ आगे प्रवेश करता है और कारण लिंग में प्रवेश करता है। कारण लिंग में प्रवेश कर के वह परम आनन्द को प्राप्त होता है। परमात्मा के आनन्द में वह आनन्दित रहता है।

धर्म की व्याख्या

आज का जब हमारा वेद का वाक्य इतना सुन्दर वाक्य प्रकट कर रहा था तो आज हम विचारें कि हमारा जो जीवन है, हमारी जो मानवता है, जब हम गृह से एक दूसरे गृह में प्रवेश करना चाहते हैं, यह परम्परा का सिद्धान्त है कि याग के द्वारा गृह में प्रवेश करो। नाना प्रकार के याग गृह में हों। जो भी विचार हो याग से गुंथा हुआ हो। इसीलिए गृहपति याग करता है। यदि हम शकुन्तका (लक्ष्मी) के द्वार पर जाना चाहते हैं, शकुन्तका के लिए मानो हम गृह का

प्रवेश करते हैं तो वहाँ भी हमारा धर्म बना रहे। क्योंकि धर्म के साथ में अर्थ होता है। अर्थ हमारा सुन्दर हो और वह उस काल में सुन्दर होगा जिस काल में हमारा धर्म बना रहेगा। धर्म किसे कहते हैं? धर्म कहते हैं प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषय है उसको जानना और उनका सदुपयोग करने का नाम धर्म है। वह व्यापक धर्म है। एक लौकिक धर्म होता है जो सद्बुद्धियों के साथ में उसका निर्माण होता है। जैसे सहायक व्यापार बना हुआ है और वह व्यापार सामान्य रूप में व्यापार रहता है। वह उसका धर्म है। वह उसको अपने में धारण करता है। क्योंकि जो प्रकृति सामाजिक होती है उस कार्य के करने में आत्मा में ग्लानि नहीं होती। परन्तु जो समाज में पद्धति नहीं होती, समाज की पद्धति से पृथक हो करके कार्य करते हैं इस लोक में, आत्मा में असत्य सँस्कारों का जन्म होने लगता है, अशुद्ध सँस्कारों का जन्म हो करके पद्धतियों से वहीं उल्लंघन करता है। जहाँ शकुन्तका (लक्ष्मी) की तृष्णा बलवती हो जाती है, तृष्णा के बलवती होने पर, किसी भी क्षेत्र में तृष्णा बलवती हो जाओ, क्रोध में हो जाओ, मोह में हो जाओ, लोभ में हो जाए, काम में हो जाए, किसी भी क्षेत्र में हो जाए, वह अनाधिकार रूप में है और उसी में मानव के द्वारा अशुद्ध सँस्कारों का जन्म होता है और वह अन्तःकरण में विद्यमान होते हैं। उसी अन्तःकरण में उन्हीं अंकुरों के साथ में मानव का आवागमन बना रहता है।

आज मैं विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं परिचय दे रहा हूँ इन शब्दों से। प्रत्येक मानव को यह विचार विनिमय करना है कि हम अपने में प्रसन्न सुसंगठित रहें और प्रकृति से पृथक हो करके कार्य न करें। पद्धति सामाजिक बनती है। एक ईश्वरीय पद्धति होती है, जो धर्म कहलाता है। जिसको वास्तविक धर्म कहते हैं। मानवीय सामाजिक जो पद्धति है वह परिवर्तित होती रहती है और जब परिवर्तन होता है तो उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की विचार धाराएँ समय और काल के साथ में परिवर्तन हो जाता है। **ईश्वरीय पद्धति तो आत्मा का भोजन है और सामाजिक पद्धति शरीर का भोजन है।** शरीर

का व्यापार बना रहता है। शरीर नियंत्रण में रहता है। व्यापार भी नियंत्रण से रहता है। परन्तु जो प्रभु का जिसको वास्तविक धर्म कहते हैं वह धर्म की एक महान् मानवीय अग्रणी पद्धति कही जाती है, उस धर्म को हमें विचारना है। सामाजिक पद्धति के अनुकूल मानव को वर्तना इसके बिना सँस्कारों का आदान प्रदान नहीं होता। उससे सँस्कार मर्यादा में रहते हैं। **सँस्कारों का आदान प्रदान करना सँस्कारों को बनाना, सँस्कारों का निर्माण करना उसी का नाम हमारे यहाँ गृह प्रवेश कहा जाता है।** गृह प्रवेश का अभिप्राय केवल यह कि हम अपने शकुन्तका के द्वार पर जा रहे हैं। शकुन्तका नाम श्री का है, श्री नाम लक्ष्मी का है, लक्ष्मी नाम द्रव्य का है, अर्थ का है। **सबसे प्रथम धर्म है तो उसके पश्चात् शकुन्तका है।** शकुन्तका के ऊपर हम विचार विनिमय करते चले जाएँ।

गृह का द्यौ-लोक में प्रवेश

विचार विनिमय केवल हमारा यह है कि **हम प्रत्येक स्थली में रहें, गृह में प्रवेश करें,** तो गृह हमारा सुन्दर बना रहे और गृह में हम ऊँचे विचारों को, ऊँची पद्धति को, ऊँची धारणा को अपने में अपनाते हुए अपने गृह में प्रवेश करके मानो गृह को स्वर्ग बनाना है। गृह को विमान बना करके द्यु लोक में ले जाना है। क्योंकि यह गृह विमान है, इसमें सत् वाक्य, ऊँचे सँस्कारों को उद्बुद्ध करते रहोगे तो इस गृह का तुम्हारे विचारों के साथ में इस गृह का आकार जैसे शब्द के साथ में मानव का आकार चला जाता है इसी प्रकार तुम्हारे विचारों के साथ में गृह के जो तन्तुएँ हैं, गृह के जो सूक्ष्म परमाणु हैं, प्रकृति की जो तरंगें गति कर रही हैं उन तरंगों में तुम्हारे इस मानव शरीर का जहाँ चित्र जाता है वहाँ गृह का भी चित्रण अन्तरिक्ष में द्यु लोक में चला जाता है।

प्रत्येक मानव का गृह का प्रवेश होना चाहिए, **गृह में पति पत्नी अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, अग्नि मानव का विचार है।**

उन विचारों को ले करके हम अग्रणी बनते चले जाएँ, मधुरता में रमण करते हुए गृह में सदुपदेश हो, सद्विचार हों, मानवता हो अव्यहृत गति हो। उसे गृह प्रवेश कहते हैं, जो चेतना है। **गृह प्रवेश तो उसी समय हो जाता है जब संकल्प बन जाता है कि मुझे गृह का निर्माण कराना है।** जैसे जीव आत्मा के माता के गर्भ-स्थल में जाने से पूर्व उसे यह विचार हो जाता है कि मुझे अमुक माता के गर्भ-स्थल में प्रवेश करना है। इसी प्रकार मानव का गृह प्रवेश तो उसी समय होता है जब संकल्प बनता है। उसके पश्चात् जब गृह पूर्ण हो जाता है, जब क्रिया प्रारम्भ होती है, चेतना प्रारम्भ होती है जैसे माता के गर्भ स्थल में चतुर्थ माह के पश्चात् जरायुज के शरीर के साथ में आत्मा कुछ गतिशील है, मानो वह एक स्थली से दूसरे स्थली पर अपना नृत्य करता है। इसी प्रकार विचारों का नृत्य होता है शरीरों में क्रिया आती है इसलिए इसे गृह प्रवेश कहते हैं।

तो आज का मेरा विचार बेटा ! यह जो तुम्हारा एक प्रश्न था, विचार था वह पूर्ण हो गया। **मेरा विचार केवल यह रहता है कि जहाँ गृह प्रवेश होता है वहाँ सदैव ऊँचा जीवन ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता रहे। अखण्डता बनी रहे। जीवन की साधना बनी रहे। शकुन्तका (द्रव्य) का सदुपयोग होता रहे। शकुन्तका ऊर्ध्व गति में गति करती रहे। यज्ञ होता रहे।** आज का वाक्य हमारा समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की अनुपम छाया में रमण कर रहे हैं। प्रत्येक मानव उसी का आश्रय लेता हुआ, उसी के आनन्द में आनन्दित होता हुआ इस संसार सागर से पार होना चाहता है। यह है बेटा ! आज का वाक्य, अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ किसी काल में प्रकट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त, अब वेद का पाठ होगा।

पूज्यपाद-गुरुदेव

॥ ओ३म् ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का शास्त्रार्थ

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बहुत ऊँचे शब्दों में अपनी उड़ान उड़ी। एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विराजमान थे। परन्तु उस समय कात्यायनी और मैत्रेयी दोनों विराजमान थीं। याज्ञवल्क्य की प्रथम विवाहिता धर्म-पत्नी कात्यायनी थीं। एक बार मैत्रेयी का और याज्ञवल्क्य मुनि दोनों का शास्त्रार्थ हुआ था। याज्ञवल्क्य एक समय कजली वनों से भ्रमण करते हुए सिन्धु की घाटी के निकट पहुँचे। सिन्धु के तट पर विराजमान थे। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता तो थे ही। **सर्वत्र भूमि पर यह विशेषता थी उनकी कि उनका तप नितान्त (अत्यधिक) था।** तो वहीं महर्षि स्वाति ऋषि और भूकृतिभा, चाक्रेति ऋषि विराजमान थे और अर्द्धभाग को यह अभिमान था कि मैं ब्रह्मवेत्ता हूँ। परन्तु राजा जनक की सभा में एक समय उनके यश का हास हो गया था तो उन्होंने यह निश्चय किया था कि मैं याज्ञवल्क्य के यश का हास करूँ। इनका मस्तिष्क इससे नीचा गिर जाए। तो अर्द्धभाग दिग्ध ने अपना एक समाज बनाया। मुद्गल गोत्र में उत्पन्न होने वाली मैत्रेयी कन्या महर्षि तत्त्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययन करती थी। उसका बड़ा गम्भीर अध्ययन था। अध्ययन समय में इसे यही प्रतीत नहीं होता था तेरे शरीर पर वस्त्र है अथवा नहीं। क्योंकि ब्रह्म के चिन्तन में इतना सँलग्न हो जाना कि उसे यह प्रतीत न रहे कि तू कहाँ है? ऐसी साधना सफल है परन्तु इन्होंने नियम बनाया कि याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ होना चाहिए। जब इन्होंने यह घोषणा कराई तो याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि तुम शास्त्रार्थ किसी राष्ट्रीय सभा में करोगे? उन्होंने कहा नहीं। हम सिन्धु के तट पर ही शास्त्रार्थ में

विचार-विनिमय करेंगे। उनका विचार-विनिमय होने लगा और विचार-विनिमय होते हुए उन्होंने मुनिवरो ! शाण्डिल्य गोत्र में उत्पन्न होने वाली कन्या को कहा। जब वे किसी ऋषि से विजय न हुए तो मैत्रेयी को लाया गया।

सुकृत का हनन

मैत्रेयी ने यह कहा कि प्रभो ! आप ब्रह्मवेत्ता हैं। मैं यह जानना चाहती हूँ कि गृह का वंश कैसे समाप्त हो जाता है? यह बड़ा आश्चर्यजनक प्रश्न था। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं, देवि ! मेरे विचार में तो ऐसा आता है कि जिस गृह में मानव पति-पत्नी हो जब उनके विचारों में सुगठिता नहीं रहती, विचारों में भ्रष्टता आ जाती है और वह अनेक वंशों तक चली आती है, एक वंश से दूसरे वंश में उसी प्रकार 15 वंश (पीढ़ियाँ) जिसके चरित्रहीन रह जाते हैं उनका वंश समाप्त हो जाता है। जब उन्होंने यह वाक्य कहा क्योंकि गृह का जो नरक है वह उस काल में बना करता है जब पुरुष अथवा गृहपति अपनी गृहिणी को त्याग करके अपने संस्कार (विवाह संस्कार) के जो वचन हैं उनको त्याग देता है। जैसे संस्कार में ब्राह्मण उपदेश देता है कि यह पत्नी है परन्तु इन वचनों को गृहपति समाप्त करके दूसरे की कन्या अथवा पुत्री अथवा पत्नियों को वह कुदृष्टिपान करता रहता है तो उसका जो वीर्यरस होता है उस वीर्यरस में से नेत्रों के द्वारा कुदृष्टि होते ही सुकृत हनन होना प्रारम्भ हो जाता है। यह दर्शन है। दर्शन क्या कहता है?

मानव के किसी कन्या को कुदृष्टि पान करते ही उसके हृदय में एक कम्पनता होने लगती है, हृदय में एक 'श्वेति' नाम की नाड़ी होती है उस 'श्वेति' नाम की नाड़ी का सम्बन्ध इडा, पिंगला से होता है और जिस समय यह कुदृष्टि होने लगता है उन सब नाड़ियों का सम्बन्ध नेत्रों से होता है। तो वह जो प्राकृतिक ईश्वर की देन जो पुण्य है, अन्तःकरण में जो पुण्य विराजमान है उन नाड़ियों के द्वारा, नेत्रों की ज्योति के द्वारा वह जन्म-जन्मान्तरों का

पुण्य समाप्त होने लगता है। क्यों होने लगता है? क्योंकि कुदृष्टि पान करना ही मानव के द्वारा एक अपराध है, पाप है। उसको ऋषियों ने पाप कहा है। उसको दर्शन भी पाप कहता है और वह पाप क्यों है? प्रश्न तो यह आता है वह पाप इसलिए है क्योंकि जिसमें शंका, लज्जा हो वह आशंका लज्जा का मूल केन्द्र बन जाता है परन्तु शंका, लज्जा के मूल केन्द्र बन जाने से मानव के पुण्य समाप्त हो जाते हैं। जो मानव केवल अपनी इन्द्रियों को वश में न रख करके अपने पुण्य समाप्त करने लगता है जन्म-जन्मान्तरों में न जाने क्या-क्या उसको बनना पड़ेगा? यह तो कोई जान नहीं पाता। परन्तु वह प्रतीत नहीं कि वह किस कामना के केन्द्र में जाएगा? मैं इसको उच्चारण तो करूँ परन्तु इतना समय नहीं। विचार केवल यह है कि परस्त्रीगामी बनना जो है वह राष्ट्र के लिए, समाज के लिए, गृह के लिए सामाजिक पुण्य और आत्मिक पुण्य दोनों समाप्त हो जाने से वंश का नाश करने वाला बन जाता है। इसीलिए वह जो वीर्यरस है जो अन्न का रस है, वनस्पतियों का रस है उसका वह रस दूषित हो जाता है और उस रस के दूषित होने पर शरीर में जो चेतना होती है उस चेतना में जैसे अन्तरिक्ष में विद्युत् है और वह विद्युत् सुकृत को हनन कर लेती है इसी प्रकार वह जो रस है और वह जो कामना की अग्नि जागरूक होती है वह कामना यदि पूर्ण नहीं होती तो उसके हृदय में एक ऐसी वेदना होती है वह वेदना, वह रस वनस्पतियों का, अन्न का बना हुआ जो वीर्य-रस है उसमें जा करके वीर्य कणों को वह समाप्त करने लगता है। जब उसके कण समाप्त हो जाते हैं, उसके कणों में जब अप्रियता आ जाती है तो मुनिवरो ! वह गृह नारकीय बन जाते हैं और इसी प्रकार एक परमाणु दूसरा परमाणु, तीसरा, पन्द्रह वंश के पश्चात् उसका शरीर ऐसा निर्जीव बन जाता है कि उस मानव के ब्रह्मचर्य में वे सुकृत नहीं रहते जिससे संसार

में पुत्र की उत्पत्ति हो। ऐसा दर्शन कहता है। क्योंकि पन्द्रह वंशों के पश्चात् यह प्रतीत होता है।

मानव के लिए प्रेरणा

परन्तु आज कोई यह कहे कि संसार में क्या है? संसार में केवल आनन्द और विषय के लिए हम आए हैं तो यह मानव की अज्ञानता है। क्यों अज्ञानता है? क्योंकि **संसार में मानव आया है मनन करने के लिए और ऋणों से उद्धार होने के लिए।** यदि ऋण ज्यों के त्यों बने रहे तो तुम्हारे मानव जीवन से लाभ क्या है? ऐसी दशा में जीवन से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए विचारकों ने कहा है, **ऋषि-मुनियों ने कहा है, हे मानव ! तू अपने जीवन को ऊर्ध्व बनाने का प्रयास कर।** जब जीवन ऊर्ध्व बन जाता है तो मानवता में परिणत हो जाता है। परिणाम यह कि आज हम अपने जीवन को ऊँचा बनाने का प्रयास करें। जिससे हमारे जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन हो जाए। क्योंकि गृह को स्वर्ग बनाना है। गृह में अतिथि सेवा करनी है। समाज को हमें यह दृष्टिपात कराना है कि मैं आदर्श हूँ। आओ दृष्टिपात करो। आओ मेरे दर्शन करो।

मैं उच्चारण कर रहा था कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब यह कहा, हे देवि ! संसार में वंश समाप्त हो जाता है। उन्होंने कहा, इसमें प्रभु की क्या विचित्रता है? उन्होंने कहा कि वह जो प्रभु है, उसका रचाया हुआ जो नियम है उसकी जो वेद रूपी पतित-पावनी विद्या है, गात्राणि है जो गाई जाती है उसके आधार पर अपने जीवन को बनाना, तप करना एक-एक कार्य हमारा उद्देश्य से नहीं केवल परोपकार से पिरोया हुआ हो। ऋण से उद्धार होने का प्रयास हो। वह जो हमारा जीवन है वह इससे एक महत्ता में परिणत होता रहता है। वही एक महत्ता वाला जीवन है देवी ! हे मैत्रेयी ! संसार में ऊँचा बनना है तो आज मेरा यह विचार है। रहा यह कि आज तुम ब्रह्म की चर्चा करो तो ब्रह्म की चर्चा भी कर सकती हो।

पूर्व जन्म का सम्बन्ध

मैत्रेयी बोली कि प्रभो ! जिस मानव का कोई सम्बन्धी हो, क्या वह सम्बन्ध पूर्व जन्म का नहीं हो सकता? उन्होंने कहा, देवि ! नहीं। **यह जो चरित्र की आभा है यह पूर्व संस्कारों से सम्बन्धित नहीं।** यह रज से सम्बन्धित रहता है और माँ के गर्भ में जब बालक पनपता है तो माता-पिता दोनों के रज और वीर्य से ही उसका निर्माण होता है। **वह जो संस्कार रक्त में हैं, जो संस्कार माता ने बनाए हैं और जो गृह के वातावरण से बनते हैं जो गृह में परमाणुवाद है उसके आधार पर नवीन संस्कार बनते रहते हैं और उन संस्कारों से मानव का जीवनचरित्र बनता है।** कुछ संस्कार होते हैं, कुछ संस्कार गृह में वातावरण में बनते हैं। दार्शनिक पुरुषों ने कहा है कि इसको हमें विचारना है कि गृह में कैसा परमाणु है? हमारे यहाँ ऋषि-मुनि जब सन्तान को जन्म देना चाहते थे तो उस समय पर्वतों के ऐसे महान्, सुन्दर वातावरण में चले जाते थे जहाँ प्राण वायु अधिक प्रदान की जाए, जहाँ सुगन्धि हो, औषध हो, माता के शरीर को छूने वाला परमाणुमात्र हो। उन परमाणुओं में से (1) कुछ परमाणु अन्तरिक्ष से आते हैं, (2) कुछ वातावरण वनस्पतियों के हैं, (3) कुछ विचारों के परमाणु हैं। उन परमाणुओं से माता के शरीर में गर्भाशय की स्थापना होती है। उसका उन्हीं विचारों से निर्माण चलता है। कुछ जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार भी उसके साथ होते हैं। तो रहा यह कि जब वह बालक जन्म लेता था तो उसका जीवन स्वस्थ, आनन्दित होता था और इसी प्रकार हमें विचारना चाहिए कि आज हमें जीवन को ऊँचा बनाने के लिए हम चरित्रवान बनना चाहते हैं। हम गृहों को स्वर्ग बनाना चाहते हैं। यदि गृह स्वर्ग नहीं बनेंगे तो यह राष्ट्र कैसे ऊँचा बनेगा? राष्ट्र भी ऊँचा नहीं बनेगा और **जब राष्ट्र और गृह समाज में सामाजिक उच्चता नहीं आएगी तो जीवन कदापि ऊँचा नहीं बनेगा।** इसीलिए मैं यह गौरव के सहित कहा करता हूँ। मुनिवरो ! जब यह शास्त्रार्थ हुआ, विचार-विनिमय हुआ।

Soul After Death

O Sages! I was just reciting a few Vedic Hymns in the Jata accent which were highly pleasing to the soul. The hymns were so beautiful and fascinating that it appeared as if the tongue, heart, mind and other organs were all getting united in a melodious repose.

O Son! Times have changed now. There was a time when even a lion acted like a tame animal when the Vedic hymns were recited before it from the core of the heart. Once it actually so happened. Long ago I saw a lion sitting at the feet of my revered Gurudeva in his Ashrama. This could be possible on account of the sacred environment of the Ashrama. The atmosphere of the Ashrama was, as if, always vibrating with the chanting of the Vedic Mantras, and emitting the fragrance of purity. Anybody whether a beast, a bird or a man, who came in contact of the Ashrama, was at once overwhelmed with the purity of the place and his violent instincts left him. The Vedic knowledge is that priceless treasure that teaches a man to be non violent and elevates him. But the world of today knows only to speak highly of the Vedas and is not ready to follow their teachings. But the utterings of the Vedic hymns are only effective when they are brought into practice. If we are not ready to do that, there is no use of reciting them.

O Sages! Today, I intend to give a serious talk on the subject matter of the soul. The soul dwells in the body with its family. Its family consists of the intellect, the mind, the five organs of perception, the five organs of action and the five life-winds. We have to think over

the different functions of these family members. A man has the capacity of memorizing and thinking in his mind, the capacity of working in the organs of action, the capacity of acquiring knowledge in his organs of perception and the capacity of rising up with the help of the Vaishwanara Agni in his life-winds. And above all these, is his intellect with its capacity of reasoning which controls all of them. The place near the soul is called the heart. Any matter which appears in the intellect is transferred to the heart. Heart (Chit mandai) is the place where the impressions of all the past lives of a man are recorded. Then there is the soul which has to take birth again and again on account of these members of its family.

O Sages ! Had the soul not been attached to these family-members there would have been no necessity of its coming to this world again and again. Just as a business man goes out from his home to far off countries for the purpose of trade, leaving behind his dear wife and children, but he remains always anxious to return home to see his family members, and hence he has to come to his house without fail, similarly the soul which has its abode in the heart is compelled to come back to the world in the frame of a body.

The elements that accompany the soul after death.

Now the question arises what are those materials which accompany the soul when it departs from the body. Our philosophers have discussed this matter and said that when the soul leaves the body it is accompanied with the subtle body which is composed of seventeen elements in their subtle forms. These seventeen elements consist of the five organs of action, the five organs of

perception, the five life-winds, the mind and the intellect. Further the thoughts and feelings which predominate the mind of a man at the time of his death continue to influence the soul even after death and after death the soul enjoys the company of other similar souls in subtle bodies in the ether. There are different categories of souls which exist in the ether. They are (1) those having Sattwaguna i.e., the quality of goodness and purity, (2) those having Rajasguna i.e., the quality of being highly active and (3) those having the Tamasguna i.e. the quality of darkness and ignorance.

The state of soul after death

O Sages ! My dear Mahanandji once stated that after death the soul roams in the ether for a period of thirteen days. I would have accepted his words but evidences tell otherwise. There are instances in which souls took rebirth soon after death, while on the other hand there are other instances also in which souls have continued to roam in the ether for hundreds of years, One thing however, is certain. A soul has to take birth after death according to his deeds performed in the life-time. The third category of souls described above viz; the souls having the Tamasguna or the quality of darkness and ignorance, on leaving this world, roam for a period of thirteen days in company of other souls of the same category and then they must come back and take birth in this world, while the souls of the first category viz. The soul having the Sattwaguna, if they so desire, may come back to this world after one month of the death or may enjoy the company of liberated souls for even hundreds & thousands of years in the ether, just like the soul of my dear Mahanandji.

Engagement of the soul after death

Now, the other question is how is the soul engaged while it is in ether for hundreds of years? The answer to this question is that the soul is never without engagement. A soul having the Tamasguna roams about for thirteen days in a certain type of air called Shringaketu and is engaged with other souls having the Tamasguna, and then leaving aside the past memories takes rebirth. A soul having the Sattwaguna is also not without engagement. It roams about in three types of airs named Indra, Mricha and Saumbhau and rules over the five elements of nature which exist there in subtle forms, and in this way is engaged with the other souls having the Sattwaguna roaming there, and then according to his deeds takes rebirth. A question arises in this connection whether the soul is gross or subtle ? When it rules over nature, should it be supposed that the soul is gross? Because one ruling over Nature should be gross. But this is not correct. In fact Nature too is as subtle as the soul, and just as in this world a gross body is ruled over by another gross body, so there in the ether a subtle body is ruled over by another subtle body.

Pujyapad Gurudev

Yogic Wisdom of the Ancient Rishies.

Parvachan Dated 27th September, 1964

॥ ओ३म् ॥

जन्मदिन की शुभकामनाएं



ओजस्व त्यागी

श्री अशोक त्यागी जी निवासी ग्राम बरला, जिला मुजफ्फरनगर, उ.प्र. ने अपने **पौत्र चिरंजीव प्रिय ओजस्व त्यागी**, सुपुत्र श्रीमति रश्मि त्यागी व श्री रविकान्त त्यागी जी, के जन्मदिन के शुभावसर पर 1100 रु. का सात्त्विक दान पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृत-वाणी को प्रकाशन करने के लिए प्रदान किया है जिसके लिए समिति हृदय से आभार प्रकट करती है।

परिवार में होने वाले शुभावसर पर जन-कल्याण के लिए सहयोग की भावना से अनुदान करने की प्रवृत्ति मानव की ऊर्ध्वागति का प्रतीक है। समिति पुनः से सहयोग के लिए आभार प्रकट करती है और शिशु को एवम् समस्त परिवार के सदस्यों को दीर्घायु, सुख, शान्ति व सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए परमपिता परमात्मा से विनय करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)

॥ ओ३म् ॥

जन्मदिन की शुभकामनाएं



ऋत्तिक त्यागी

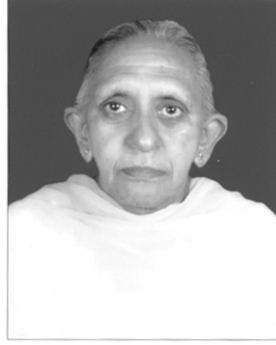
श्रीमति बृजबाला त्यागी व श्री राजकिशोर त्यागी निवासी ग्राम मकनपुर, जिला गाजियाबाद, उ.प्र. ने अपने **चिरंजीव पौत्र ऋत्तिक त्यागी**, सुपुत्र श्रीमति अदिति व श्री हरिओम त्यागी जी, के जन्मदिवस के शुभावसर में हमेशा की भाँति 1101 रु. का सात्त्विक सहयोग पूज्यपाद गुरुदेव के प्रवचनों को प्रकाशित कराने के लिए प्रदान किया है। त्यागी जी प्रवचनों का स्वाध्याय करते हुए और दैनिक व वार्षिक यज्ञों के द्वारा अपने व अपने परिवार को ऊर्ध्वागति में ले जाने में निरन्तर संलग्न हैं और परिवार के शुभावसरों पर विशेष रूप से प्रकाशन सहयोग समिति को निरन्तर अर्पित करने में अधिग्रहण रहते हैं जिससे कि वैदिक परम्परा को धारा प्रवाहित रखने में उनकी कर्तव्य पारायणता भी जीवन में बनी रहे।

समिति निरन्तर तन, मन व धन के सहयोग के लिए परिवार के सभी सदस्यों का आभार हृदय से प्रकट करती है और प्रिय पौत्र को जन्मदिवस की शुभकामनाएँ विशेष रूप से प्रकट करते हुए समस्त परिवार के सदस्यों को दीर्घायु, सुख, शान्ति व सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए परमपिता परमात्मा से याचना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)

॥ ओ३म् ॥

स्मृति



कुमारी हर्ष लता कक्कड़

कुमारी हर्ष लता कक्कड़ ब्रह्मचर्य जीवन यापन करती हुई दिनांक 8 जून, 2012 को ब्रह्मलीन हो गईं। वह अपने शान्ति प्रिय जीवन में वेदों का अध्ययन करते हुए सत्संगों व याग के माध्यम से अपनी गति को ऊर्ध्वागति में ले जाने में संलग्न रहीं। उन्हीं की पुण्य स्मृति में पूज्य माता जी, श्रीमति तृप्ता देवी कक्कड़ निवासी मयूर विहार, फेज-1, दिल्ली ने 3100 रु. का सात्त्विक सहयोग, पूज्यपाद गुरुदेव की अमृत-वाणी को साहित्य के रूप में प्रकाशित कराने के लिए प्रदान किया है।

समिति को कक्कड़ परिवार से प्रकाशन सहयोग निरन्तर प्राप्त होता रहा है जिसके लिए समिति हृदय से बारम्बार आभार प्रकट करती है और **कुमारी हर्ष लता कक्कड़ जी** जैसी विलक्षण आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धा नम्र भाव से अर्पित करते हुए परमपिता परमात्मा से यह विनम्र प्रार्थना करती है कि ऐसी दिव्य आत्माएँ संसार में प्रभु आती रहें जिससे कि समाज व राष्ट्र में वैदिकता की परम्परा का निरन्तर प्रचार व प्रसार बना रहे। इसके साथ-साथ समस्त परिवार के सदस्यों की दीर्घायु, सुख, शान्ति एवम् सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए प्रभु से विनय करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)

॥ ओ३म् ॥

चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा से एवम् पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (पूर्व जन्म के शृङ्गी ऋषि जी) के शुभ आशीर्वाद से चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायाग का आयोजन ग्राम सूजती, जिला बागपत, उ.प्र. में दिनांक 24 मई 2013 से 31 मई 2013 तक बड़े हर्ष एवं उल्लास के साथ आयोजित किया जा रहा है जिसमें आप अपने सब सम्बन्धियों व मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

कार्यक्रम

**दिनांक 24 मई, 2013 शुक्रवार से
31 मई 2013 शुक्रवार तक**

प्रातः 6:15 बजे से 6:30 बजे तक	ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या)
प्रातः 6:30 बजे	ओउम् ध्वजा रोहण (केवल प्रथम दिन)
प्रातः 7:00 बजे से 10:00 बजे तक	देव यज्ञ (चतुर्वेद ब्रह्म पारायण यज्ञ)
प्रातः 10:00 बजे से 11:00 बजे तक	वेद प्रवचन व ईश भजन
प्रातः 1:30 बजे से 2:45 बजे तक	भजनोपदेश
सायं: 3:00 बजे से 6:00 बजे तक	यज्ञ वेदोपदेश सन्ध्या एवं भजन

यज्ञ के शुभ अवसर पर भोजन व निवास की व्यवस्था है।

सम्पर्क सूत्र -

श्री सूरजमल दरोगा जी
श्री किशनपाल सिंह, प्रधान
मा. ओंकार सिंह
मास्टर कालू राम - 9720597107

मासिक सहयोग

श्री हरिराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री विवेक त्यागी, अल्कापुरी, हापुड़	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
श्री वी.पी. सिंह, वसुंधरा, गाजियाबाद	250 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्रीमती शशि गुप्ता, नोएडा	125 रुपये
डॉ. ओ.पी. आर्य, आगरा	125 रुपये
श्री गुलजार सिंह, जगत पुरी, कृष्णा नगर, दिल्ली	100 रुपये
श्रीमती वीना त्यागी, अलीगढ़।	100 रुपये
श्री राहुल शर्मा, बैंगलोर	100 रुपये
श्री पराग शर्मा, नोएडा	100 रुपये

सूचना

सभी आजीवन सदस्यों व अन्य महानुभावों से नम्र निवेदन है कि उनके पास जो पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों के कैसेट व वीडियो कैसेट उपलब्ध हैं उसके विषय में निम्न पते पर सूचित करें जिससे कि उनको भी प्रकाशित किया जा सके।

वैदिक अनुसंधान समिति के आजीवन सदस्य बनने के लिए शुल्क 800 रु. और वार्षिक सदस्य बनने के लिए शुल्क 100 रु. है जिसको आप समिति के पते पर व निम्न पते पर डाक द्वारा भेजकर सदस्य बन सकते हैं।

डॉ. मधुसूदन प्रसाद, प्रकाशन मंत्री

ए-59, पंचशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017

दूरभाष : (0)11-26498737

**वर्ष 41 : अंक : 487
अप्रैल 2013**

**मूल्य:
पाँच रुपये**

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक अनुसंधान

समिति पंजी०

के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38,

शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।

(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

POSTED AT N.D.P.S.O ON 10/11-04-2013

Published on 5th day of the same month